UDGAM VIGYATI, Volume 2, 2015, (November)
Online ISSN 2455-2488
Page No. 127-129

# "शिक्षा – उद्देश्य, औचित्य एवं गुणवत्ता"

*योग्यता मिश्रा*
*(शोधार्थी, माता जीजाबाई शा. स्ना. महा., इन्दौर)*

***सारांश***
*शिक्षा का उद्देश्य मात्र बाल्यकाल से युवावस्था तक प्राप्त की जाने वाल पुस्तकीय ज्ञान से आमने सामने होना नहीं बल्कि जीवन को उद्देश्यपूर्ण जीने की समझ देना है। शिक्षा का औचित्य बंधे–बंधाए सूत्रों के पाश में रह कर सिर्फ दो जून की रोटी कमाना नहीं, बल्कि जीवन को सतह से लेकर गहराई तक समझने, जीने व समाज को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से लाभान्वित करना है। आने वाले एवं बीत गए कालक्रम में शिक्षा की स्थितियाँ जिन भी कारणों से बदली या बदलने की कोशिश की जा रही है उन कार्य कारणों का स्थूल एवं सूक्ष्म अवलोकन नितांत आवश्यक है। इसी दृष्टयार्थ शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट, सटीक एवं शुद्ध होना तथा शिक्षा का मानव जीवन की तुष्टी–पुष्टी का कारक होना व शिक्षा का मूल्यांकन, प्रयोग आदि के लिए उच्च से उच्च मापदंडो पर व्यवहारिक रूप में खरे उतरना अत्यावश्यक है।*

---

**प्रस्तावना**

सर्वप्रथम शिक्षा ग्रहण की व्यवस्थित प्रक्रिया किस काल में शुरू हुई यह हम गणना एवं इतिहास के शोध द्वारा निकाल सकतें है। परंतु इससे भी पहले शिक्षा ग्रहण करना मनुष्य ने प्रारंभ कर दिया था। जिस तरह हम जानते हैं कि मनुष्य का विकास शनैः शनैः हुआ है। ठीक उसी तथ्य को बारीकी से देखें कि–विकास होना, अर्थात् जीव कहीं कुछ सीख रहा है और यही सीखने की प्रक्रिया शिक्षित होना कहलाती है। आदि मानव प्रकृति रूपी गुरू से शिक्षा ग्रहण कर सामाजिक दायरों का, तकनीकों, संस्कृति का, कला का सृजन कर पाया एवं वर्तमान स्थिति तक पहुँच पाया है। वेद–पुराणों द्वारा शिक्षण, हमारी विकसित शिक्षण पद्धति का परिचायक रहा है। स्वतः ही अनुभवों द्वारा, किवदंतियों द्वारा, पंचतंत्र, हितोपदेश जैसी दंत कथाओं द्वारा मनुष्य को मनुष्य होने के प्रति प्रेरित व शिक्षित करती था। धीरे–धीरे मनुष्य बढ़ता गया, शिक्षित होता गया।

कबीर शिक्षा के पारंपरिक स्वरूप से दूर हो। कागज–कलम, हिसाब–किताब उनकी शिक्षा के साधन नहीं थे। परंतु किसी भी तरह आज तक उनकी वाणी सुनकर, साखियाँ पढ़कर अन्दाजा नहीं लगा सका की वास्तव में वे इस शिक्षा प्राप्ति की रूढ़ परम्परा से कभी भी उनका परिचय हुआ ही नहीं। उनका एक–एक शब्द व्यवहारिक रूप से खरे सोने के समान है। यही एक मात्र उदाहरण नहीं जो हमें शिक्षा के स्वरूप को समझाए। बल्कि चिरकाल से ऐसे उदाहरण हमारे आस पास फैले हुए हैं। बस तह हटाकर टटोलने की एवं उनको आदर्शात्मक रूप से आत्मसात करने की आवश्यकता है। अधिकांश के लिए शिक्षा का अर्थ यह सीखना है कि हम क्या सोचें। समाज, माता–पिता, पड़ोसी, किताब, शिक्षक ये सभी आपको बताते है कि आपको 'क्या सोचना चाहिए'। 'क्या सोचना चाहिए' वाली यांत्रिक प्रणाली को हम शिक्षा कहतें है और ऐसी शिक्षा आपको केवल यंत्रवत, संवेदनाशून्य, मतिमंद और असृजनशील बना देती है। किंतु यदि आप यह जानते हैं कि 'कैसे सोचना चाहिए' न कि 'क्या सोचना चाहिए' तब आप यांत्रिक, परंपरावादी नहीं होंगे बल्कि जीवंत मानव होंगे, तब आप महान सृजनकर्ता होंगे।

कबीर से बात शुरू हुई है तो साहित्य के द्वारा शिक्षा के रूढ़िवादी स्वरूप के दर्शन करें तो स्वतः ही ज्ञात होता है कि शिक्षा के उद्देश्य व औचित्य कुछ भी नहीं यदि उस शिक्षा में गुणवत्ता नहीं, यदि उस शिक्षा में व्यवहारिकता नहीं।

UDGAM VIGYATI, Volume 2, 2015, (November)
Online ISSN 2455-2488
Page No. 127-129

गुरूकुल मे दी जाने वाली शिक्षा पुस्तकीय होने के साथ–साथ व्यवहारिक अधिक ज्ञात हुई इसी के आधार पर अनेकोनेक साहित्यिक कृतियों में जिनमें गुरूकुल शिक्षण पद्धति द्वारा समाज को शिक्षित किया जा रहा था वहाँ तक राष्ट्र का खाका स्वर्णिम था। शनैः शनैः यही धरा बारंबार दमित शोषित हुई, आनंदमठ जैसे उपन्यासों से भलिभाँति ज्ञात होता है कि– ''शिक्षा के वृहत क्षेत्र द्वारा ही भारतभूमि धन्य व कृतज्ञ हुई।'' [(1)] आक्रमणों का दौर थमा नहीं, क्यों यह भी एक बहुत बड़ा विचारणीय प्रश्न है?

आगे बढ़ने पर ज्ञात होता है कि जब हम स्वतंत्र हो गए तब परिणामतः हम राजनीतिक तौर पर स्वंतत्र हुए परन्तु हमारा शिक्षा क्षेत्र गुलाम ही बना रहा धीरे–धीरे स्थितियाँ और बिगड़ती गई। यदि इस तथ्य को पूर्ण रूपेण समझना है तो इसका दर्शन हमें श्री लालशुक्लजी के उपन्यास 'राग दरबारी' में करने को मिलते हैं उनके उपन्यास में पात्रों के बीच शिक्षा को लेकर गंभीरता, शिक्षा का मुख्य कार्य गौण होने का आभास देता है। उदाहरणार्थ– ''क्योंकि इस कॉलेज की स्थापना राष्ट्र के हित में हुई थी। इसलिए उसमें कुछ हो या नहीं गुटबन्दी काफी थी।''[(2)] शिक्षकों की स्थितियाँ, आम जीवन में शिक्षित व्यक्ति के लिए लोगों की सोच दर्शाती है। शिक्षा का अर्थ सिर्फ किताब वाचन एवं परीक्षा दे–देकर अंको की प्राप्ति ही नहीं अपितु इस प्रक्रिया का एकमात्र उद्देश्य एवं औचित्य पूरा का पूरा व्यवहारिकता से जुड़ा हुआ है। इस उपन्यास के संवादों से यह तथ्य स्पष्ट होता है–कुछ दूर चलने पर रंगनाथ ने कहा, ''गलती मेरी ही थी। मुझे कुछ कहना नहीं चाहिए था'' रूप्पन बाबू ने सांत्वना दी, ''बात तो ठीक ही है। पर कसूर तुम्हारा भी नहीं, तुम्हारी पढ़ाई का है। ''सनीचर ने भी कहा, ''पढ़कर आदमी पढ़े–लिखे लोगों की तरह बोलने लगता है। बात करने का असली ढंग भूल जाता है। क्यों न जोगनाथ।''[(3)]साथ ही शुक्लजी के विचार, जो आजादी के बाद के शिक्षा के क्षेत्र को उन्होंने जिस नजरिये से देखा उस अनुसारः– ''वर्तमान शिक्षा पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है, जिसे कोई भी लात मार सकता है।'' [(4)]धीरे–धीरे आगे बढ़ते है तो साहित्य, इस परिवेश को अपने नजरिए से खंगालता चल रहा है। अलग अलग परिवेश को लेकर लिखे गए उपन्यास दर्शाते चले गए कि शिक्षा निश्चित समय पर उद्देश्पूर्ण, औचित्य के मापदण्ड पर खरे उतरते हुए व्यवहारिक ढाँचे को कितना प्रभावित कर रही है। मणिशंकर मुखर्जी द्वारा रचित उपन्यास 'जन अरण्य' बांग्ला से हिन्दी में अनुवादित उपन्यास हमें शिक्षा की व्यवहारिकता के संदर्भ मे एक बड़ा प्रश्न चिन्ह लिए हुए दिखता है। उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात उपन्यास के पात्र सुकुमार एवं सोमनाथ शिक्षित बेरोजगारों की श्रेणी में खड़े असहाय जीव मात्र दिखते हैं। जन अरण्य के मि. नन्दी के द्वारा दर्शाये गए ये विचार प्रदर्शित करते हैं कि शिक्षा सदैव व्यवहारिकता की मांग करती है– ''यदि बुरा न मानें तो एक सच्ची बात कहूँ। बंगाल के शिक्षित बेकार भी विधाता की एक अभूतपूर्व रचना ही है। ये स्कूल–कॉलेज में घूम–घूमकर दो–एक अंग्रेजी शब्दार्थ कि किताब रट लेते हैं, पर एक लाइन अंग्रेजी की खुद लिख पायें, इतना भी नहीं सीखते। बारह चौदह वर्षों तक प्रतिदिन स्कूल–कॉलेज जा जाकर ये और इनके मास्टर क्या करते हैं, भगवान ही जाने। दुनिया की कोई खबर ही नहीं रखते। ये नहीं जानते कि मोटर कैसे चलती है, धान किस समय होता है, सिपिया और लाल रंग में क्या अंतर है। कलम से भारी कोई चीज इन्होंने कभी नहीं उठायी। इन लोगों ने कोई हाथ का काम नहीं सीखा, मेनर्स जानते ही नहीं। कोई भी ज्ञान इन लोगों को नहीं। ये केवल अनएम्प्लायड नहीं है, हम लोगों के प्रोफेशन में इन्हें अनएम्प्लायेबुल– काम करने और दिए जाने के नाकाबिल कहा जाता है। इन लोगों को नौकरी देने से कोई लाभ नहीं।'' (5)ममता कालिया के उपन्यास ''दौड़'' में उच्च शिक्षा के बावजूद होने वाली शिक्षा के प्रति मायूसी के माहौल को सर्वव्याप्त दर्शाया है। इस उपन्यास में शिक्षा से मिली आपाधापी की जिन्दगी में पिसता युवा अपनी शिक्षा की सार्थकता तलाशता है और स्वीकारता है कि ''जिस पद्धति से मैंने शुरू से आखिर तक की शिक्षा ग्रहण को वह मात्र मुझे दौड़ते रहने की मजबूरी दे पाई है।''[(6)]''शिक्षा आदमी को प्रायः कायर बना देती है।''[(7)] उक्त विचार लेखक हवाहर चौधरी ने अपने व्यंग्य संग्रह की भूमिका में उल्लेखित किए। इस विचार के संदर्भ में एक तथ्य उभर कर सामने आया है कि शिक्षा से जुड़ी भिरूता, उसकी व्यवहारिक उपयोगिता की कमी के कारण है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कदम रखते ही कोई भी अपने भविष्य के ताने–बाने बुनने की सक्षमता पा जाता है। परन्तु इस बुनावट का छितरापन महज सपनों में नहीं व्यवस्था में भी होता है। इस बात को पुष्ट करता उनका व्यंग्य 'उच्च शिक्षा में अण्डरवर्ल्ड' बेहद रोचक

UDGAM VIGYATI, Volume 2, 2015, (November)
Online ISSN 2455-2488
Page No. 127-129

स्वरूप प्रस्तुत करता ळें उक्त व्यंग्य के द्वारा चौधरी जी ने बताया है कि – ''उच्चशिक्षा के प्लेटफार्म पर डाँटे–डपटे जानेवाले कुलीनुमा आदमी की क्या औकात होती है। जिसने चाहाता जोत दिया, जिसने जहाँ चाहा हाँक दिया। लेकिन प्रभु बड़ा दयालु है। वह चाहे तो पंगु भी पहाड़ चढ़ सकता है।'' [8]संपूर्ण शिक्षा के क्षेत्र का उच्चतम शिखर पी.एच.डी. जैसी डिग्री को माना जाता है। परंतु इस शिखर का मस्तक भी शिक्षा जगत के माफिया के आगे झुका रहता है। ''खिचड़ी!!... उच्च शिक्षा में खिचड़ी! ऐसा तो आज तक नहीं हुआ सर। हायर एजूकेशन तो मुर्गों के बल पर ही चल रहा है सर। लोग तो 'जनेऊ' उतारकर 'मुर्गों' पर कृपा कर रहे हैं आजकल।... ये लड़के चिकन तन्दूरी और कबाब का ऑर्डर दे चुके हैं, बन ही रहे होंगे सर''। गवली ने पास आकर धीरे से कहा। [9]''इसके साथ ही भोजन की टेबल पर अण्डरवर्ल्ड की यह मीटिंग समापन की ओर बढ़ चली। बाहर खड़े लड़के, अँधेरे में सुबह से लड़ने की कोशिश कर रहे हैं। डॉन ने बड़े आग्रह के बाद केवल तीन मुर्ग–तन्दूरी ग्रहण किये। उनके सामने रखी प्लेट हड्डियों से भर गयी। उच्चशिक्षा में काम आये बदकिस्मत मुर्गों की हड्डियाँ समझ में नहीं आता मुर्गों में इतनी हड्डियाँ क्यों होती हैं। मुर्गे जब मुर्गे ही होते हैं तो वे बोनलेस क्यों नहीं होते?...''[10]

इन सभी साहित्यिक कृतियों के अध्ययन से पता चलता है कि शिक्षा यदि उद्देश्यपूर्ण न होतो औचित्यपूर्ण नही लगती है। और यही भाव शिक्षित होने के बावजूद भयभीत होने का है।

जे. कृष्णमूर्ति का विचार इस तथ्य के प्रति मत रखने का संबल प्रदान करता है। उनके अनुसार – ''क्या परिक्षाऐं पास कर लेने और नौकरी पा लेने पर शिक्षा को कार्य पूर्ण हो जाता है? क्या शिक्षा एक ऐसी सतत् प्रक्रिया नहीं होती जा हमारी चेतना के, हमारे अंतस के भिन्न भिन्न तलों पर अनेक गतिविधयों में, निरंतर चलती ही रहती है? इसके लिए सिर्फ जानकारी के दावे की नहीं बल्कि वास्तविक समझ की दरकार होती है। हर धर्म, हर अध्यापक, हर राजनीतिक प्रणाली, ये सब हमें यह बताने में लगे हैं कि हम क्या करें, क्या सोचें और क्या आशाएँ रखें।'' (11)

**संदर्भ ग्रंथ सूची –**

1. आनंदमठ, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय।
2. पृ.सं.20, राग दरबारी लेखक – श्री लाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन।
3. पृ.सं.118, राग दरबारी लेखक – श्री लाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन।
4. पृ.सं.10, राग दरबारी लेखक – श्री लाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन।
5. पृ.सं.95, जन अरण्य, लेखक – मणिशंकर मुखर्जी, राजकमल प्रकाशन।
6. पृ.सं.40, दौड़, लेखक – ममता कालिया, पेपर बैक्स।
7. पृ.सं.7, माननीय सभासदों!, लेखक – जवाहर चौधरी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
8. पृ.सं.15, माननीय सभासदों!, लेखक – जवाहर चौधरी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
9. पृ.सं.17, माननीय सभासदों!, लेखक – जवाहर चौधरी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
10. पृ.सं.18, माननीय सभासदों!, लेखक – जवाहर चौधरी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
11. पृ.सं.188, शिक्षा क्या है?, लेखक – जे. कृष्ण मूर्ति, राजपाल प्रकाशन।